"उन" का पाकिस्तान

गोपाल प्रसाद व्यास

दिल्ली
नई किताबें कार्यालय

—प्रकाशक—
अज्ञान चतुर्वेदी बी० ए०
व्यवस्थापक—नई किताबें कार्यालय,
मिरज़ीवालान, दिल्ली।

प्रथमावृति
आश्विन, २००२ वि०

—मुद्रक—
सुगण चन्द्र शास्त्री
धारा प्रेस,
दरसाँ स्ट्रीट, दिल्ली।

लम्बी नाक छरहरी काया,
सब कुछ मिल जाता मगान है,
उनका पाकिस्तान तुम्हारे,
पीहर बसने का प्रमाण है।

मेरी कविता की आदि उद्गम

बाबू गुलाबराय की

महा महिषी

डबल भैंस

को

जो शायद

उनके सुपुत्र की ससुराल में

अब कहीं मुफ्त चर रही होगी ।

——गोपालप्रसाद व्यास

—पहले इसे

मैं हास्य-परिहास की कविताएँ अच्छी लिखने लगा हूँ। अच्छी ही नहीं, बहुत अच्छी लिखने लगा हूँ। इस के प्रमाण में मैं आपको सम्पादकों के पत्र, कवि-सम्मेलनों के निमन्त्रण और छपी हुई कविताओं के कटिंग जो सब मैंने सम्हालकर एक रजिस्टर में चिपका लिये हैं, जब चाहें तब दिखा सकता हूँ।

मेरी सफलता का इससे बड़ा नमूना क्या हो सकता है कि कविता बिना सुने ही लोग मेरी शकल पर हंसते हैं, सुनने के बाद ताली पीटते हैं, और बाहर निकलने पर उंगली उठाते हैं।

इसीलिए ही कभी-कभी जब सुप्रसिद्ध हिन्दी इतिहासकार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के असामयिक निधन पर दृष्टि डालता हूँ तो मुझे बड़ी निराशा होआती है।

हाय! अब कौन शुक्लजी के बिना मेरे स्थान को हिन्दी में स्पष्ट कर सकेगा?

कौन अब हिम्मत के साथ यह कह सकेगा कि हमने युग के व्यंग्य को व्यासजी की वाणी में मुखरित होते देखा है। हजार वर्ष के हिन्दी-साहित्य में हास्य के नाम पर जो भड़ुआपन चल रहा था, उसका जवाब व्यासजी के रूप में हमें हिन्दी ने दिया है।"

तब, ऐ हिन्दी के नवीन इतिहास लेखको ! विधाता की इस भूल को, जो उसने असमय शुक्लजी को उठाकर की है, अपने इस उत्तरदायित्व को, जो जबरन तुम्हारी कलम पर आपड़ा है, क्या तुम निबाह सकने में समर्थ हो सकोगे ?

बुद्धिमानी इसीमें है कि तुम इस अवसर से लाभ उठाओ। तुम्हारी लेखनी मेरे विषय में लिखते हुए धन्य होउठे। तुम लिखो कि "व्यासजी जैसी अमर शक्तियाँ साहित्य के इतिहास में कभी-कभी ही उदित होती हैं, और हिन्दी के इतिहास में तो इने-गिने दो-चार ही व्यक्ति हैं, जिनका नाम श्री व्यासजी के साथ लिया जा सकता है। इस छोटी-सी उमर में ही उनकी कलम ने जो जोहर दिखाए हैं ऐसे उदाहरण हमें तो हिन्दी-साहित्य में देखने को नहीं मिले।"

कोई भले कहे कि शुक्लजी नवीन लेखकों के यशगान में बड़े ही कृपण थे, पर आज कहीं वे होते, और मुझे देख पाते, तो विश्वास मानिए कि वे मेरे अन्तर को खोलकर रख देते और लिखते कि "व्यासजी की कविताओं में हमें शिष्ट हास्य की सुन्दर झांकी मिली। उन्होंने अपरूप वस्तुओं में से हास्य की उद्‌भावना न कर जीवन की हास्योन्मुखी वृत्ति का उद्‌घाटन किया है। क्रोचे के अभिव्यंजनावाद में छायावाद (इम्प्रेशनिज्म) का पुट देकर सामयिक लहरियों से उच्छ्रलित व्यासजी की सृष्टि अपूर्व होउठी है।"

पर शोक! वह रत्नपारखी न रहा ! तब—

ए नये युग के उदार लेखको ! तुम अब यह लिखोगे कि "व्यासजी ने हिन्दी के सारे परिहास लेखकों को १००० कदम पीछे छोड़ दिया है। उर्दू के अकबर होते तो दांतों तले अंगुली दबा जाते। 'हास्यरस' के चुटकुले कहना और बात है, उक्तियों में स्वयं वैदग्ध्य होता है, पर हास्य को विषय और वस्तुओं में बांधना टेढ़ा कार्य्य है।

व्यासजी ने इस महत्वपूर्ण कार्य को अपने हाथ में लेकर हम लोगों के मस्तक को ऊँचा उठाया है, वे सूर की तरह सरस, तुलसी की तरह व्यापक और बिहारी की तरह प्रिय रहेंगे।"

और ए मेरे आलोचक दोस्तो! तुम्हारी मित्रता यदि आज के दिन काम नहीं आई तो वह फिर किस दिन काम आयेगी? अपनी पुस्तक की पहली प्रति मैं तुम्हारे पास भेज रहा हूं। तुम हिन्दी के पत्रों में वह तूफान बरपा करदो कि कहर मच जाये। इक्के-तांगों वालोंसे लेकर ग्वालियर महाराज तक एक बार मेरी पुस्तकको देखने के लिए ही नहीं, खरीदने को ललच उठें। मेरी कविता में जो गुण नहीं हैं उन्हें खोज निकालो। पाठक जो सोच न सकें वह लिख डालो। तुमने अलोचना लिखने के लिए वे जो सौ-पचास शब्द अपनी डायरी में नोटकर मेज पर रख छोड़े हैं, मैं चाहता हूं कि तुम उन सब का एकबारगी ही मेरी पुस्तक पर प्रयोग कर बैठो। तुम लिखो—"व्यासजी अंग्रेजी के यह हैं, फ्रेंच के वह। रूस का अमुक लेखक भाषा सौष्ठव में व्यासजी से यों पीछे रह जाता है और अमरीकी लेखक अपनी अश्लीलता के कारण हमारे व्यासजी का पल्ला यों नहीं पकड़ सकते।" यही नहीं तुम यह भी लिखो कि "इधर बीस बरस से हिन्दी में ऐसी दिलचस्प कोई दूसरी किताब नहीं निकली, हम प्रत्येक हिन्दी पाठक का ध्यान इस पुस्तक की ओर आकृष्ट करना चाहते हैं।"

आप क्या हिन्दी के पाठकों की आदत से परिचित नहीं कि वे किसी भले आदमी की कदर नहीं करते। अरे न करें। यदि हम आपस में संगठित हैं तो पाठक हमारा कर ही क्या सकेंगे? आप मेरी कद्र करिए मैं आपकी दाद दूँगा। मैं कवि ही नहीं अलोचक भी हूँ। आप मेरी प्रशंसा कीजिए, मैं आपकी तारीफ के पुल बांध दूँगा। यदि

आप कवि हैं तो व्यास और वाल्मीकि से बढ़ा दूंगा। यदि आप इतिहासकार हैं तो विंसेन्ट स्मिथ से भी ऊंचा उठा दूंगा। यदि आप दार्शनिक हैं तो बर्नार्डशा और कौले से भी दस हजार मील (आजकल के वायुयानी युग में कदम क्या चीज हैं) आगे बढ़ा दूंगा—मनतुरा काजी बिगोयम तो मरा हाजी बिगो।

मित्रो! मैं चाहता हूँ तुममें से कुछ जान-बूझकर मेरे विरुद्ध लिखना शुरू करदें। क्योंकि मुझे बताया गया है कि यह विरुद्ध आलोचनाएँ प्रचार में बड़ी सहायक होती हैं। आदरणीय बनारसीदासजी चतुर्वेदी, एक अन्दोलन मेरे नाम पर भी सही। भाई रामविलास, मैं प्रगतिवादी नहीं हूं—एक तमाचा मेरे गाल पर भी। मेरी कविता के छन्द-अलंकार, वाजपेयीजी तुम कहाँ हो, तुम्हें पुकार रहे हैं। मैं कनवजिया नहीं हूं, मेरे पूर्वी मित्रो! तुम कहां सोरहे हो? तुम लिखते क्यों नहीं कि—"जिसे देखो आज वही कवि बनने जारहा है। हास्य लिखना तो लोगों ने खिलौना समझ रक्खा है। अभी व्यास नाम के महाशय की एक पुस्तक देखने को मिली। स्वयं लेखक तो अपनेआप को न जाने क्या समझे बैठा है, पर असल में ऐसे सस्ते हास्य का नमूना हमें तो अन्यत्र दिखाई नहीं दिया। जनाब को पत्नी के सिवाय दूसरी चीजों में हास्य ही नहीं फुरता। कविताओं का टेकनीक एकदम पुराना है और विचार हजरत के १६वीं शताब्दी के। नारी को गलत पेन्ट किया गया है। भारतीय नारी को बदनाम करने की मिस मेयो जैसी प्रवृत्ति भी इस पुस्तक में दिखाई पड़ती है। ऐसा लगता है कि व्यास का अपनी विकृत भावना ही पत्नी के चित्रों में मुखर होउठी है। अधिकांश कविताओं को पढ़कर लगा कि यह भारतीय घर का चित्र नहीं स्वयं लेखक के घरका पहलू है। इन कविताओंमें शैली की एकतानता है। कुरुचि, शिष्टता और सामाजिकता की अवहेलना कीगई है। अधिकांश कविताएँ अश्लील हैं। अभी पाश्चात्य देशों के मुकाबिले हमारा हिन्दी

का साहित्य कितना तुच्छ और नगण्य है कि उसकी तुलना नहीं की जा सकती। श्यामजी अगर अँगरेजी नहीं जानते तो उन्हें अपने पड़ोसी बंगाली, मराठी के साहित्य को ही देख जाना चाहिए। तब उन्हें अपना स्थान ठीक दिखाई देजायगा कि जिनके पासङ्ग में उनकी रचनाएँ कितनी फूहड़, थोदी और बेतुकी हैं।"

इसके बाद तुम मेरी किसी एक थोड़ी-सी कविता को लो और उसमें जगह-जगह मिलने वाले छन्द-भङ्ग, पुनरावृत्ति, ग्राम्यप्रयोग और अश्लीलता का पर्दाफाश कर डालो। पुस्तक के गेट-अप, कागज और मूल्य पर भी तुम्हारी टिप्पणी रहनी चाहिए। प्रेस की अशुद्धियों को बचा जाना सही आलोचना नहीं है। और देखो चलते-चलते मेरे प्रकाशक पर अपनी स्याही की दो बूँदें ऐसी छिड़कना कि अगली पुस्तक छापने से पहले उसे दस बार सोचना पड़ जाय। मतलब यह कि मेरी कविता को इस प्रकार से तुम्हें दो कौड़ी की सिद्ध करके दम लेना है, समझ गये न ?

यह मेरी पहली पुस्तक है। मुझ पर बड़ी-बड़ी किताबें तो बाद में लिखी जायँगी, पर छोटी किताबें यदि अभी निकल जायं तो कोई हर्ज न होगा। मतलब मेरा कहने का यह है कि यदि "श्यामजी की कला" (गुप्तजी की कला) "श्यास : एक अध्ययन" (साकेतः एक अध्ययन) जैसी किताबें अभी नहीं लिखी जासकें, तो भाई प्रभाकर माचवे, तुम जल्दी-से-जल्दी दिल्ली चले आओ। मैं आजकल दिल्ली ही हूँ। मुझसे आकर दो-चार इन्टरव्यू ले लो और जल्दी ही "श्यास के विचार" (जैनेन्द्र के विचार) नाम से एक पुस्तक तैयार करदो। छपाने का प्रबन्ध सब होजायगा।

और पाठको, ऐ मांगकर पुस्तक पढ़ने वाले शौकीनो, ओ पुस्तकालय में नवीन पुस्तकों की बाट देखने वाले प्रेमियो —कुछ कद्र करना सीखो ! तुम्हारा शरीर अपना नहीं वह राष्ट्र का है, और हम

राष्ट्र का निर्माण करने वाले साहित्यिक हैं। तुम्हारा मन अपना नहीं वह किसी और का है, और उस 'किसी और' की स्थापना तुम्हारे मनमें हमने ही तो की है। तुम्हारा धन अपना नहीं वह गरीबों का है, और हम हिन्दी के गरीब लेखक हैं। तुम्हारा ज्ञान अपना नहीं, वह हमसे उधार लिया गया है। आज हम इस सबकी गरज चाहते हैं। सबकी ओर से मैं चाहता हूँ। तुम्हें यह कर्जा चुकाना ही होगा। मेरी पुस्तक खरीदनी ही होगी।

न केवल तुम किताब ही खरीदोगे, मेरी भूख कुछ और भी बढ़ी हुई है। मैं यश का भूखा हूँ—मुझे कवि-सम्मेलनों का सभापति बनाओगे। मैं धन का भूखा हूँ—तुम मुझे लिफाफों में चैक भेजोगे। मुझे जिन्दा रहने के लिए सोसाइटी चाहिए, कविता लिखने के लिए रङ्गीनी चाहिए, बोलो, दे सकोगे?

वाहरे कवि के स्वप्न! और उसकी कविता की फजीहत! और उसका ऊपर तैर आने वाला अहंकार! और व्यंग रूप में उसकी अपनी ही आत्म-प्रशंसा!

गोपालप्रसाद व्यास

"हिन्दुस्तान"
नई दिल्ली
१५-१०-४५

"उन" का पाकिस्तान

आज कलम की धार कुण्ठित, 'इन्कपाट' भी खाली है।
कविता कैसे नई लिखूं जब रूठ गई घरवाली है?

"ओ घरवाली! खामख्याली,
नाहक ही शमशीर निकाली,
वह शमशीर जो कि दुश्मन पर
कभी नहीं जाती है खाली।

अरे सुनो तो, सच कहता हूं
संगिनि, रूपसि, रस की प्याली!
मैं कब गया सिनेमा, तुमने
रोनी सूरत व्यर्थ बनाली!

और देर से घर आने का
कारण भी सुन लो कल्याणी!
मिस्टर जिन्ना की सुनता था
आज रेडियो पर मैं वाणी।

उनकी वाणी—ऐसी मीठी,
ऐसी सुन्दर, ऐसी कोमल,
जैसी कभी-कभी खुश होकर
तुम मुझसे कहती हो रानी!

उनके तर्क अकाट्य, कि जैसे
तुम कर देती मुझे निरुत्तर!
ज्ञानवान वह ठीक तुम्हारी तरह
बुद्धि से पूर्ण, प्रखर स्वर!

वे भी करते हैं प्रमाण के सहित
सदा ही तीखी बातें,
कौन पराजित नहीं हुआ है
उनका भीषण भाषण सुनकर?

लम्बी नाक, छरहरी काया,
सब कुछ मिल जाता प्रमाण है।
उनका पाकिस्तान तुम्हारे
पीहर बसने के समान है।"

"चलो हटो, मत मुझे सताओ
आये, बड़े बनाने वाले!
तुम ही फजलुलहक पूरे हो
जिन्ना मुझे बताने वाले!

"घर" का पाकिस्तान

"अच्छा, मैं जिन्ना हूं! क्या
कर लोगे? लो अकड़ी बैठी हूं।
मेरा पाकिस्तान मायका!
जाऊं? अब मैं भी ऐंठी हूं।

"हे राजाजी, क्यों फिर मेरे
चरण चूमने को आये हो?
मैं न मानने वाली हूं तुम
चाहे जितना घबड़ाए हो।

"चलो हटो, बस दूर रहो जी,
दूर बस जिगर जलाने वाले,
रोज-रोज दे धता शाम को
देरी कर घर आने वाले!

"मैं कहती हूं, आखिर तुमको
घर से क्यों इतनी नफरत है?
घर क्यों आते नहीं, निर्दयी,
हरा, शैतान सिनेमा वाले!"

'हरे हरे! क्या कहा सिनेमा?
ये आंखों का रोग भयंकर!
गांधी जी ने नहीं बताया
इसे गृहस्थों को श्रेयस्कर।

"उतरी हाय नसीम, कि
कानन ने अब शादी कर डाली।
चिटनिस 'ओवरएज' बहुत
लम्बी है वह बनमाला आली।

"इन्हें देखने मैं जाऊंगा ?
तुम्हें छोड़ कर घर की रानी !
तेरे एक-एक 'मोशन' पर
ये सब भर जायेंगी पानी।

"मैं तो कभी नहीं जाऊंगा
आगे से अब सुनो सिनेमा।
मैं तो कभी नहीं आऊंगा
और देर से धीमा - धीमा।

"ये जिन्ना ऐसे ही हैं जिस
जगह पड़ेंगे यही करेंगे,
लाओ भूख लगी है जल्दी
खाना दे दो लल्ला की मा।"

पत्नी पर कण्ट्रोल करो

हे मजिस्ट्रेट महाराज! हमारी पत्नी पर कण्ट्रोल करो।

गेहूं, शक्कर, घी, तेल, नमक,
माचिस तक पर राशनिंग हुआ।
तो यही एक क्यों बचे, प्रभो,
कुछ इसका भी तो मोल करो!
हे मजिस्ट्रेट महाराज......

"उन" का पाकिस्तान

मैं उन्हें लाख समझाता हूं,
कहता हूं छिड़ी लड़ाई है।
कम खाओ, बिल्कुल कम खर्चो,
दुनिया पर आफत आई है।

वह कहती हैं—"दुनिया पर आफत
कम है, तुम पर ज्यादा है।"
यदि और कहूं तो सच समझो,
लड़ने पर ही आमादा है।

वह कहती हैं—"कण्ट्रोल खाक,
तुम देखो उन बाबू के घर—
कल ही तो एक नई बोरी—
गेहूं की भर कर आई है।"

मैं हाय उन्हें क्या बतलाऊं
वे सैक्टर वार्डन हैं अपने,
पहले से नाम लिखाने की
वह हिम्मत अब फल लाई है।

फिर उनकी जान हथेली पर,
रहती है फर्जी हमले में।
उस मुकाबिले में खाक एक
बोरी उनके घर आई है॥

पर यह सुन कब चुप रहती हैं,
यूं बड़े ठाठ से कहती हैं—
"लल्ला के चाचा ! तुम भी कुछ,
ऐसी ही जाकर पोल करो,

हे मजिस्ट्रेट महाराज..........

घर में गेहूं के लाले हैं,
सन्दूकों पर भी ताले हैं।
हम बेकारी के पाले हैं,
पर उनके ठाठ निराले हैं।

मैं परेशान हूं उनको लो,
वे मस्त हुई हैं मुझको पा,
कल ही तो एक नई चिट्ठी,
भाईजी को भिजवाई है।

लिखा है—'भाई, जल्दी से,
भाभी को लेकर आजाओ।
प्यारे मुन्नू की भोली-सी,
सूरत मुझको दिखला जाओ।

"रुकना मत तुम्हें कसम मेरी,
तेरे जीजा कर रहे याद"
(है गलत बात) कैसे लिखदूं,
तुम मत आओ, घर रुक जाओ।

मुन्ने को कपड़े, भाभी को साड़ी,
भाई को कोट-पेंट।
घी, तेल, नमक, शक्कर, सूजी,
जल्दी लाओ, जल्दी लाओ।”

यह भी लाओ, वह भी लाओ,
कैसे लाऊं, कण्ट्रोल हुआ।
फिर यह कब मुमकिन है उनके
आर्डर पर टालमटोल करो।

हे मजिस्ट्रेट महाराज...........

“तुम पर भी बड़ी मुसीबत है,
रह-रह कण्ट्रोल खतम होता।
मुझ पर भी बड़ी मुसीबत है,
रह-रह कर नया हुकुम होता।

तुमको भी डर है हुक्म उदूली का,
साहब सच कहता हूं।
मैं भी अपनी ‘घर-गवरमिंट’ से,
परेशान ही रहता हूं।

मैं तुमको खूब समझता हूं,
तुम भी कुछ मुझ पर गौर करो।
मैं ठीक-ठीक ही बात आपकी,
अर्ज आज कर देता हूं।

पत्नी पर कन्ट्रोल करो

पत्नी पर काबू पाने से,
कन्ट्रोल सफल होजाएगा।
हम तुम दोनों का काम,
एक दम में हलका होजाएगा।

फिर देखें हिटलर कैसे बढ
पाता है किसी मोर्चे पर।
जापान बिचारा कभी नहीं,
भारत में आने पाएगा।

यह दुनिया के सारे ऊधम,
बिल्कुल समाप्त होजाएंगे।
गांधी चाहे मरजायं किंतु,
हमको 'सुराज' मिल जाएगा।

मैं बात पते की कहता हूं,
मत मर को डांवाडोल करो।
हे मजिस्ट्रेट महाराज..... ....

डबल भैंस

ओ बाबूजी डबल भैंस !
मेरी कुटिया में घुस आई,
यह बाबूजी की डबल भैंस !
ओ बाबूजी की डबल भैंस !

यह काली-सी, मतवाली-सी
क्यों बिना सूचना घुस आई ?
समझा होगा शायद तूने
इसको कालिज का खुला मैस !

ओ बाबू जी की...... .....

मैं जीव-ब्रह्म का भेद, बीच में
माया का पचड़ा लेकर,
चल दिया आज सुलझाने को
युग-युग की विषम समस्याएँ ।

हथल मैम

हैं बाबूजी भी खूब, गले में
घंटी तलक न बांधी थी;
मैं चौंका, टूटा ध्यान, हाय!
भावों को भारी लगी ठेस

ओ बाबूजी की...............

उस रोज सुनहला मौसम था,
दिल रह—रहकर खोजाता था,
बादल छाये, बह रहा पवन
सूरज भी निकल न पाता था।

थी फूट पड़ी कविता मुझमें
मैं बैठा छन्द बनाता था,
अपनी 'कल्पित-इच्छित' प्रेयसि का
झूठा प्यार मनाता था।

तो घर के बर्तन खनक उठे—
"क्यों दफ्तर आज न जाना है?
लकड़ी लाओ, घी नहीं रहा,
लो उठो शाक भी लाना है।

तुम छोड़ो अपने गीत, मुझे
भी तो गीतों में जाना है।
जी, उठो-उठो क्यों देर कर रहे,
चूल्हा मुझे जलाना है।

बस बैठ गये कागज लेकर
कुछ और काम तो हुई नहीं,
हा ! फूट गई तकदीर, मौत भी
आती मुझको नहीं दई !

"इससे तो बेहतर था गरीब
घसियारे को ब्याही जाती।
वह मुझसे कहता बात, और
मैं अपने मन की कह पाती।"

यों कह कागज फाड़ा उसने,
लौटी दवात सदमा खाके।
औ, कलम गिरी, कुचली कुर्सी से
दूर गिरा मैं भी जाके।

क्वेटा जैसा भूकम्प आज भी
आया था मेरे ऊपर।
है बाबूजी का दोष, भैंस
बांधी न गई घर के अन्दर।

यदि भैंस बंधी होती तो क्यों
हो पाता ऐसा विकल "क्लैश"।

ओ बाबू जी की.....................

ऐ भैंस ! अभी तक मैं तुझको
अक्कल से बड़ी समझता था।
ऐ महिषी ! अब तक मैं तुझको
अपरूप सुन्दरी कहता था।

तेरी जलक्रीड़ा मुझे बहुत ही
सुन्दर लगती थी रानी !
तेरे स्वर का अनुकरण नहीं
कर सकता था कोई प्राणी।

पर आज मुझे मालूम हुआ
तू निरी भैंस है, मोटी है !
काली है, फूहड़ है, थल-थल,
मरखनी, रैंकनी, खोटी है !

मेरे ही घर में आज चली
तू पाकिस्तान बनाने को ?
मेरी ही हिन्दी में बैठी
तू जनपद नया बसाने को ?

मैं कहता हूं हटजा-हटजा
वरना मुझको आरहा तैश !
ओ बाबूजी की..............

खोगई-खोगई

(१)

वह थी कलम,
फाउन्टेन कहा करता था,
लिखता था जिससे
नित्य पत्र सुसराल को,
क्योंकि श्रीमतीजी के
रिश्ते थे अनेक
और उन सबको
निबाहना जरूरी था।
मेरी मुनीम,
जो रोज लिखा करती थी—

खोगई-खोगई

धोबी का हिसाब,
नई लिस्ट खरीदारी की,
कर्ज दोस्तों का,
औ' अशेष हाल वेतन का,
सोते वक्त डायरी—
रिकार्ड गये जीवन का।
हाय चिरसंगिनी !
अजस्र मसि-धारिणी !!
जो भावों के बिना ही
नये गीत लिख देती थी,
खुद न खरीदी
किसी मित्र की धरोहर थी,
आज देखी जेब तो
प्रतीत हुआ खोगई !

खोगई-खोगई !

[२]

बहुत दिन बाद
आज कविता जगी थी,
चित्र सुन्दर लगा था,
एक नया दृश्य देखा—
कि छवि चाहता था

आंकना उस मोहिनी को
जो मेरे पड़ोस के
मकान में अतिथि थी।

श्यामा थी।
सलौनी थी,
न षोड़षी थी, किन्तु
वह डेढ़ हाथ ही की
जन-मन को वेध लेती थी।

उसकी चपलता
अंग-भंगिमा,
दृगों के भाव—
सुन्दर थे,
भव्य थे,
समुत्तम थे,
बढ़िया थे।

बाबू कप्तानसिंह
शिमले से लाये थे,
वह झबरीली थी
विलायती नसल की,
साहब मजिस्ट्रेट
पाकर पसन्द होंगे
और 'रायसाहबी' के
चान्स बढ़ जाएंगे।

कुतिया नहीं थी
कामधेनु ही कहेंगे,
वह 'रायसाहबी' का
मानो स्वप्न साकार थी,
पपी कहा करते थे
बाबू कप्तानसिंह
घर में ममी से बढ़ी
उसकी वकत थी।

टांगे फैला के
थी पड़ी हुई कोच पर,
बाबू कप्तानसिंह
उसे सहला रहे थे,
मन्द-मन्द गारहे थे,
कोई अंग्रेजी गीत।

आज इसी छवि को
मैं गीतबद्ध चाहता था,
पैड जो निकाला तो
पपी ने मुझे धोका दिया--
कोच पर से उछली
कि मेज पर उचक गई,
परदे में डुबकी
कि अन्दर खिसक गई,

खिड़की से कूदी
या किवाड़ से चिपक गईं,
यहां गईं, वहां गईं,
नहीं-नहीं, कहां गईं ?
ये गईं-खोगईं !

खोगईं-खोगईं !

(६)

इसी रंज-ग़म में
निमग्न कवि बैठे थे
कि अन्दर के कमरे का
सहसा खुला द्वार---
श्रीमती पधारीं---
'कवि दुनिया में लौट चलो'
भोजन करने का भी
तकाजा किया बार-बार।
बोल उठीं---
"कोई परवाह नहीं,
लेख जो न छपते हैं,
कविताएं लौटतीं
न चलती कहानियां,
मेरे सम्पादक !
तुम्हें क्या पहचानें खाक !

मैं जानती हूं तथ्य
आपकी प्रगति का !
मरने दो किसी—
पत्रिका के सम्पादक को,
हंने दो जगह रिक्त
रेडियो स्टेशन में,
फिल्मों में हिन्दी-गीत
अब चल निकले नाथ !
आप छोड़ दूसरा
बुलाया कौन जायगा ?

अस्तु उठ बैठिए
बनाया है जिमीकन्द
मांगके पड़ौसिन से
पैसे कुछ उधार आज;
रद्दी इन किताबों की,
सचित्र अखबारों की,
सुनती हूं आजकल
तेज बिक जाती है।

मेरी ये किताबें !
जिन्हें जान से जुटाया है !
नाश्ते का खर्च काट
वीपी से मंगाया है !

खुद को ठगाया है,
वक्त पड़ने पर
होशियारी से उड़ाया है,
रद्दी की चीज हुई ?
शाक जिमीकन्द का !!
पड़ौसिन के पैसों से !
जाएंगे चुकाए
जो सचित्र अखबारों में—
जिनमें छपे हैं
मेरे लेख, गीत,
एक-एक शब्द
अनमोल लाख रुपयों से !

शाक जिमीकन्द की
नहीं रही चाह मुझे।
तुझ-सी आदिल,
अलौनी,
बेढंगी,
बुरी,
भौंडी,
पत्नी की नहीं नेक परवाह मुझे।
कविताएं लौटती हैं ?
फिल्म स्टेशन ?
पत्रिका के सम्पादक ?
मुझसे करती मजाक ?
हाय अकल-खोगई !

खोगई ! खोगई !

हिजड़िस्तान

ए वायसराय महाराज !
हमारी भी मांगें मंजूर करो।
तुम एक नजर से ही सबको
देखा करते हो दलित-बन्धु !
ऐ, अल्पसंख्यकों के त्राता !
मत हमको दिलसे दूर करो।
ए वायसराय महाराज............!

हम बृहन्नला के वंशज हैं
लम्बा इतिहास हमारा है।
हमने ही पिछले 'भारत' में
वह भीष्मपितामह मारा है।
तुम कोष व्याकरण में खोजो
तो लिंग नपुन्सक पाओगे,
सबने हम लोगों की स्वतन्त्र
सत्ता को पृथक पुकारा है।
हम नारि-वर्ग में नहीं,
नहीं पुरुषोंके दलमें आ सकते।

हम हिन्दू हरगिज नहीं,
नहीं मुस्लिम कहलाए जा सकते।
है वर्ग हमारा अलग, जाति भी
पृथक, न भाषा मिलती है,
फिर कहो किसलिए नहीं पृथक
हम 'हिजड़िस्तान' बना सकते ?
तो अये-हये! हम लोगों के
मत सपने चकनाचूर करो।
ए वायसराय महाराज......।

है भिन्न हमारा धर्म—
न शादी करते बच्चे जनते हैं।
है भिन्न हमारा कर्म—
किसी के पति-पत्नी कब बनते हैं ?
भगवान सलामत रक्खे
हमारे ढोलक और मंजीरों को,
हम नहीं नौकरी करते हैं,
हम नहीं किसी की सुनते हैं।
हम संख्या में थोड़े यद्यपि
पर व्यापक क्षेत्र हमारा है।
शादी विवाह में बिना हमारे
होता नहीं गुजारा है ?
हर हिन्दुस्तानी के दिमाग पर

दिल पर, कार्य-प्रणाली पर—
बापू से पूछो हम लोगों का
था कि प्रभाव तुम्हारा है ?
तुम इसी बात को ले करके
वक्तव्य नया मशहूर करो।

गु वायसराय महाराज......

हम राजभक्त, विश्वासपात्र,
महलों में रहते आये हैं।
मुगलों के शासन में हरमों में
हमने दिवस बिताये हैं।
है कुछी दिनों की बात कि
वाजिदशाहअली के शासन में
हम मन्त्री थे, सेनाना थे,
हमने भी शस्त्र उठाये हैं।
तुम हमें इशारा कर देखो
फिर हम अपनी पर आते हैं।
जापनी हो या जर्मन हो
हम सब को मार भगाते हैं।
बन्दूकों का क्या काम
अजी, हम स्वयं बम्ब के गोले हैं
तालियां हमारी तेज कि दुश्मन
सुनते ही भग जाते हैं

"उन" का पाकिस्तान

सो इसीलिए गांधीजी से
मिलने को मत मजबूर करो।
ए वायसराय महाराज......।

ऐ बापू, जिन्ना सावधान!
यह सुलह नहीं हो पायेगी,
जो अगर गलत कुछ कर बैठे
तो हिजड़ों से ठन जायेगी।
हम नहीं अहिंसा के कायल,
ढोलक की तोप बना देंगे।
ये 'गांधीवाद' व्यर्थ होगा,
हम 'हिजड़ावाद' चला देंगे।
हम खुद ही ताली बजा-बजा,
अपना सन्देश सुनायेंगे।
हम चौराहे पर नाचेंगे,
भेड़ों की भीड़ बुलायेंगे!
ये अंग्रेजों का राज यहां,
अन्याय नहीं कर पाओगे।
आजादी से क्या काम हमें,
हम 'हिजड़िस्तान' बनायेंगे।
तुम राजाजी के साथ-साथ,
चाहे कोशिश भरपूर करो।
ए वायसराय महाराज......।

सुकुमार गधा

मेरे प्यारे सुकुमार गधे !
जग पड़ा दुपहरी में सुनकर
मैं तेरी मधुर पुकार गधे !
मेरे प्यारे सुकुमार गधे !

तन-मन गूंजा, गूंजा मकान
कमरे की गूंजी दीवारें,
लो ताल-लहरियां उठी मेज
पर रखे चाय के प्याले में,
कितनी मीठी, कितनी मादक,
स्वर, ताल, तान पर सधी हुई
आती है ध्वनि, जब गाते हो
मुख ऊंचा कर, आहें भर कर
तो हिल जाते छायावादी
कवि की वीणा के तार गधे !
मेरे प्यारे........।

तुम दूध-चांदनी सुधा-स्न
बिलकुल कपास के गाले-से,
हैं बाल बड़े स्पर्श सुखद—
आंखों की उपमा किससे दूं ?
वे कजरारे, आयत लोचन
दिल में गढ़-गढ़ कर रह जाते,
कुछ रस की बेबस की बातें
जाने-अनजाने कह जाते,
वे पानीदार कमानी-से
हैं श्वेत-श्याम- रतनार गाभे !
मेरे प्यारे......।

हैं कान कमल-संपुट से थिर,
नीलम से विजड़ित चारों खुर,
मुख कुन्द-इन्दु-सा विमल
कि नथुने भंवर सदृश गंभीर तरल,
तुम दूध नहाये-से सुन्दर,
प्रति अंग-अंग से तारक दल
ही झांक रहे हों निकल-निकल,
हे फेनोज्ज्वल, हे श्वेत-कमल,
हे शुभ्र अमल, हिम से उज्ज्वल,
तेरी अनुपम सुन्दरता का
मैं सहस्र कलम ले करके भी
गुणगान नहीं कर सकता हूं

फिर तेरे रूप सरोवर की
मैं कैसे पाऊं पार गधे ?
मेरे प्यारे.......।

तुम अपने रूप शील, गुण से
अनजान बने रहते हो क्यों ?
ऐ लात फैंकने में सुकुशल !
पगहा बंधन सहते हो क्यों ?
तुम भी अमरीकन रमणी का
सचमुच दुलार पा सकते हो,
तुम भी मिस नरगिस के संग में
नित 'वाकिंग' को जा सकते हो,
'आई० सी० एस० के बंगले की
सचमुच सोभा हो सकते हो,
ऐ साधु, स्वगम् को पहचानो,
युग जाग गया तुम भी जागो,
क्यों शासित होकर रहते हो
मन की कायरता को त्यागो,
तुम भारत के धोबी-कुम्हार भी
शासक, पूंजीवादी हैं,
तुम क्रान्ति करो, लादी पटको,
बंधन फोड़ो, घर से भागो,
ऐ प्रगतिशील युग के प्राणी !
तुम रचो नया संसार गधे !
मेरे प्यारे.......।

पति के मित्र

मुझ को न गलत समझो नारी,
मैं मित्र तुम्हारे पति का हूं।

मैं सज्जन हूं,
सन्तोषी हूं,
अच्छे कुल का हूं,
पढ़ा - लिखा।

हूं सुरुचि - शील - संपन्न,
स्वस्थ—तन से मन से,
मैं मानव की दुर्बलता को
तो पास नहीं आने देता,

पति के मित्र

सरस कितनी है उनकी उक्ति,
भाव कितने हैं उनके उच्च,
चित्र कितने हैं उनके भव्य;
और इस युग के श्री जैनेन्द्र,
'सुनीता' उनकी कृति उदार,
इसे पढ़ना अवश्य सुकुमारि,
यही अनुनय है बारम्बार।
तभी तो समझोगी तुम देवि,
बात का मर्म, देह का धर्म !
खैर मुझको इससे क्या इष्ट;
अरे, मैं गृही, निस्पृही, साधु !
विरोधी रति का, रती बिरति का हूँ !
मैं मित्र तुम्हारे पति का हूँ !

हिन्दी का अध्यापक

हिन्दी का अध्यापक हूं !
मेरे भी लम्बी चुटिया है,
है बन्द गले का कोट,
गोल टोपी,
लम्बा सिर, पूरा तन,
मैं खम्बा-सदृशः
चलायमान युग में हूं खड़ा हुआ अविचल
अपने कालिज के घेरे में
'पंडितजी' कहकर व्यापक हूं !
मैं हिन्दी का अध्यापक हूं !

*　　*　　*

पति के मित्र

जिससे शिव, ब्रह्मा, नारद,
विश्वामित्र, सरीखे हार गये,
लक्ष्मी, रानी !
तुम सच समझो
मैं कुछ ऐसी ही मति का हूं !
मैं मित्र तुम्हारे पति का हूं !!

* * *

कल रासपुटिन की आत्मकथा
जो मित्र मांगकर लाये थे,
वह पुस्तक भद्दी, गन्दी है,
पड़जाय न घर में हाथ किसी के,
वापस लेने आया हूं,
मैं दृढ़ चरित्र का व्यक्ति,
मुझे इन बातों से
बेहद नफरत ।
ऐ सहज सुशीले !
सच कहता--
मैं सीधी-सादी गति का हूं !
मैं मित्र तुम्हारे पति का हूं !

* * *

मैं नहीं झांकता ऊपर को
मन में रख कोई भिन्न भाव,
और ऐसा भी है नहीं—

कि आँखें मेरे वश में न हों,
कि जिसने मन वश में कर रखा—

कि जैसे भारत की नारी
रहती पति के वश में।

माना तुम सुन्दर हो सचमुच
शायद तुममें आकर्षण है,
पर यह सब ही पर्याप्त नहीं,
मेरे मन को छल सकने में

हूं 'पत्नीव्रत' का पालक
बालकाल ही से शिष्य रहा,
मैं एक कनफटे यति का हूं!
मैं मित्र तुम्हारे पति का हूं!

मैं आर्यसमाजी नहीं, बहनजी!
मुझे सुधारक मत समझो,
अब तक लखनऊ न गया,
रहा यूं ही पढ़ने का शौक,
पढ़ा फ्रायड, उल्टा है मार्क्स,
अनातोले, मोपासा ऊँचे,
धन्य हैं मेघदूत के कवि,
मुझे विद्यापति बहुत पसन्द,
बिहारी, दूलह, देव, रहीम,
आदि की रचनाएं तुम पढ़ो,

हिन्दी का अध्यापक

कभी पूछते--

'पंडितजी, कवि के मन में पीड़ा क्यों होती ?

मैं कहता--

गुमराह हो गए हैं

ये सब कवि हिन्दी वाले।

घर के गीत,

प्रकाशक अपने,

जो लिख मारा, छपा लिया सब।

अन्धे पाठक झूम-झूमकर

स्वर्ग हुए जाते मतवाले!

लड़के हंस पड़ते उत्तर सुन

चन्द लड़कियां मुस्का देतीं,

मैं भी हंस पड़ता

अपने उत्तर की गुरुता का ख्याल कर,

इसीलिए समझे बैठा--

खुद को विद्वान विश्लेषक हूं!

मैं हिन्दी का अध्यापक हूं!

--:o:--

हटो, मुझे भरती होने दो

अब मुझको भरती होने दो !
रोको मत, भरती होने दो !

जीवन में रस शेष रहा क्या ?
अब भी और विशेष रहा क्या ?

दो-दो बार गया
उसके मैके——
वापस लेने को मैं;
पर आना तो दूर
सहज मुस्काकर
आदर कर न सकीं,
जी भर न सकीं
मेरा अपनी मीठी--
मीठी प्यारी बातों से,
बाहों से, आहत

हिन्दी का अध्यापक

कुछ पत्नी से, कुछ बच्चों से,
कुछ ट्यूशन, कुछ यजमानों से,
मुझको कब फुरसत मिलती है—
दुनिया के नये समाचारों को,
अखबारों को,
सुन लेने की,
पढ़ पाने की।
फिर इस जग की नूतन चीजें,
नूतन खबरें,
नई व्यवस्था—
हैं अस्पृश्य,
अदृश्य,
मोहमय,
सब छलना है,
सब जड़ता है,
धोखा है,
सब प्रवंचना है,
इनसे जितना सम्भव होवे,
दूर-दूर रहना श्रेयस्कर !
इसी नीति से जगतीतल की
रीति-नीति का मापक हूं !
मैं हिन्दी का अध्यापक हूं।

* * *

"उन" का पाकिस्तान

सूर, कबीरा,

तुलसी, मीरा,

केशव की कविताओं का

मिनटों में अर्थ बता सकता हूं,

अलंकार के भेद-प्रभेदों का

आशय समझा सकता हूं,

इससे भी आगे बढ़कर

मैं शब्द-शक्ति पर

और व्यंग्य पर

चुप न रहूंगा

जगह-जगह पर

अपनी टांग अड़ा सकता हूं!

पर—

लड़के कमबख्त,

पूछते मुझसे पंत, निराला, बच्चन!

अलंकार की जगह पूछते—

मुझसे रचना-शैली, मीटर,

ध्वनि-रसवाद विहाय, पूछते—

छायावाद—प्रगति में अन्तर।

हाय, पूछते—

जयशंकर की कविताओं के अर्थ निराले,

कहो क्यों नहीं मर जाते हैं

इन्हें कोर्स में रखने वाले?

भरती होने दो

दिल को—तर
कर न सकी—
खुद जान-बूझ कर ।

मैं कोशिश करता रहा—
कहीं मिल जायं—
तो अपना सर पटकूं,
कर पकड़ूं, चूमूं चरण
और अपने मन की
सब व्यथा कहूं—
"श्रीमती, सुनो," कहदूं उनसे
मैं अब न मैस में खा सकता ।
रस से भीगी बरसातों को
सूने में नहीं बिता सकता ।
पर आना-सुनना दूर रहीं—
बचती-सी हाय निगाहों से ।
मैं असफल होकर फिरा, प्राय,
सम्भावित सभी उपायों से ।
अब रोती हैं तो रोने दो !
मुझको तो भरती होने दो !!

ले नाच जम्हूरे........।

तू दिल्ली में बसजा, बसजा,
सरकार यहां पर बसती है।
हर चीज यहां पर सस्ती है,
ट्यूशन भी जल्दी मिलती है।
चांदनी चौक, बारह खम्बा
बिड़ला मन्दिर के आस-पास,
तू रोज घूमने जाया कर
तबियत भी यहां बहलती है।
जो रोज घूमने जाएगा,
सो नई रोशनी पाएगा।
दो-चार दिनों के चक्कर में
कविता लिखना आजाएगा।
क्या, मिलते नहीं मकान,
अरे लेकर मकान क्या करना है?
तू दिन में धन्धा देख, रात,
गुरुद्वारे में सो जा एकदम!

ले नाच जम्हूरे छम-छम-छम!
छम--छम--छम--छम!!

मेरे साजन !

मेरे साजन, मेरे साजन !

(१)

वे आठ बजे पर उठते हैं,
उठते ही चाय मंगाते हैं ।
फिर लेकर के अखबार—
'लैट्रिन' में सीधे घुस जाते हैं ।

वापस घन्टे में आते हैं,
आते ही 'शेव' बनाते हैं ।
फिर लिये तौलिया कन्धे पर
हर रोज गुसल को जाते हैं ।
होगया गुसल का द्वार बन्द
मैं सुनती हूं कुछ मन्द-मन्द
वे नये सिनेमा के गीतों को
लहजे से दुहराते हैं ।

आते ताजा-ताजा होकर
फिर सर में कंघा देते हैं ।
शीशे में देख हंसा करते
होठों में मुस्का देते हैं ।

वे पैंट पहनकर खड़े हुए,
मैं उनको कोट पिन्हाती हूं।
मोजे-जूते पहना कर के
फीतों में गांठ लगाती हूं।
वे टाई अपनी बांध रहे,
मैं 'नाट'-गांठ सुलझाती हूं।
वे मुंह पर हाथ मसलते हैं,
मैं शीशा उन्हें दिखाती हूं।

मैं आगे-पीछे दौड़-दौड़
कपड़ों की 'क्रीज' सम्हाल रही।
टेबुल पर लाकर 'डिनर' रखा
कुर्सी पर उन्हें बिठाल रही।
वे ना-ना करते जाते हैं,
मैं जबरन उन्हें खिलाती हूं।
वे जब-जब मुझे देखते हैं,
मैं तब-तब ही मुस्काती हूं।
मेरे साजन मेरे साजन !

(२)

सोने का उनका समय नहीं
उठने का उनका पता नहीं।
मैं उन्हें जगाकर, गाली
खाने की करती हूं खता नहीं।

मेरे साजन

वे असमय कुसमय उठते हैं,
उठते ही कलम उठाते हैं।
मैं कहती हूं 'बिस्तर छोड़ो'
वे 'जरा रुको' फरमाते हैं।

जब घण्टी बजाती साढ़े नौ
तब कहीं पखाने जाते हैं।
वापस मिनटों में आते हैं,
न्हाते हैं, कभी न न्हाते हैं।

जैसे ही वे न्हाके आये
मैं भोजन उन्हें परोस रही।
वे जल्दी-जल्दी खा चलते,
मैं अपना हृदय मसोस रही।

वे कोट पहनने जाते हैं
मैं उनकी छड़ी टटोल रही।
उनका रुमाल खोगया कहीं
मैं गठरी-पुठरी खोल रही।

वे दफ्तर आने को होते
मैं अपना सबक सुनाती हूं।
यह नहीं, वह नहीं, यह लाना,
वह लाना, याद दिलाती हूं।

वे कोट छुड़ाकर भाग चले,
मैं पीछे-पीछे जाती हूं।
दरवाजे तक आये न हाथ
तो तेजी से चिल्लाती हूं—

"मंगल है आज शीघ्र आना
मैं महावीरजी जाऊंगी।
मुन्ना को आया था बुखार
उसका परसाद चढ़ाऊंगी।"

मेरे साजन—मेरे साजन!

कुछ नहीं समझ में आता है!

कुछ नहीं समझ में आता है।

जी, उनको क्या है मर्ज, नहीं कोई भी ठीक बताता है।

कुछ नहीं....।

मैं वैद्य-डाक्टरों को लाया,
कहते है—कोई इलाज नहीं।
हंसते हैं, मुझे बनाते हैं,
आती है उनको लाज नहीं!
अम्मा से कहता, कहती हैं—
"ऐसा तो हो ही जाता है।"
भाभी को देखो, मुझे छेड़ने
से आती हैं बाज नहीं।

मैं जहां कहीं भी जाता हूं
वह दिखलाता लाचारी है।
हो जिसका नहीं इलाज, अजी,
ऐसी यह क्या बीमारी है?
मैं उनसे कहता हूं—"कहो"
जमीन क्यों पानी मांग गया?"

वो ऐसे मुझे घूरती हैं,
गोया मेरी मक्कारी है !
पर मुझको तो अपना कसूर
कोसों तक नहीं दिखाता है !
कुछ नहीं......।

लो, तुम भी सुनो हाल यह है
रह पीली पड़ती जाती हैं।
हर वक्त अम्हाई लेती हैं,
अलसाई-सी दिखलाती हैं।
वे ऐसी लगती हैं, मानो—
दर्पण पर धूल छाआई हो,
वे अनखाई-सी रहती हैं,
अनखाई ही रह जाती हैं !

कुछ चक्कर-से आते उनको
मैं सर सहलाया करता हूं।
वे उबी—उबी—सी रहती हैं,
तबियत बहलाया करता हूं।
कुछ उनमें भक्ती—भाव आजकल
अनदेखा बढ़ आया है,

कुछ नहीं समझ में आता है

मैं तुलसीकृत रामायण का
बस पाठ सुनाया करता हूं !
मुझसे तो असमय में उनका
वैराग्य न देखा जाता है !
कुछ नहीं........।

वे ऐसी नाज़ुक हुईं, न
नीचे-ऊंचे ज्यादा जा सकतीं ।
फिर यह कब मुमकिन है—कि
बोझ की चीजें अधिक उठा सकतीं।
यों मन उनका चलता रहता है
तरह-तरह की चीजों पर;
लेकिन कुछ ऐसा हुआ—
सुबह का खाना ठीक न खा सकती !

कुछ ऐसा उनको हुआ—कि
रूखी चीजें अक्सर भाती हैं ।
नौकर को चुपके भेज, चटपटी
चाटें अधिक मंगाती हैं ।
पर इतना तो है ठीक, मगर
हैरत में हूं यह देख-देख

'उन'का पाकिस्तान

कोरे मिट्टी के बर्तन को
क्यों फोड़-फोडकर खाती हैं ?
शायद इस कारण ही उनपर
पीलापन चढ़ता जाता है ।
कुछ नहीं........।

मित्रो, कुछ मुझे बताओ तो—
क्यों तेज नहीं चल पाती हैं ?
क्यों जल्द पसीना आता है,
ओठों पर जीभ फिराती हैं !

क्या हुआ कि साड़ी भी जैसे
बांधना अचानक भूल गईं;
कुछ तुन्दिल-तुन्दिल नरम-गरम,
खरबूजे - सी दिखलाती हैं ।

मैं छै महीने से परेशान
आराम नहीं मिल पाता है ।
उनकी इस "हीं-हीं-हीं-हीं" से
दिल मेरा बैठा जाता है ।

कुछ नहीं समझ में आता है

होगई जवानी व्यर्थ, हाय,
शृंगार नहीं, रोमांस नहीं,

अब "माया" के बदले घर में
"बालक" मंगवाया जाता है।

कुछ नहीं समझे में आता है!
कुछ नहीं समझ में आता है!

जो लिखी न हो घरवाली पर

दफ्तर ने कविता मांगी है,
जो छापी जाय दिवाली पर।
फिर शर्त लगाई है ऐसी,
जो लिखी न हो घरवाली पर।

तो मेरी सरस्वती, बोलो,
मैं क्या गाऊं, कैसे गाऊं ?
तुझ रसवन्ती को छोड़,
कल्पना, और कहां से मैं लाऊं ?

यों दुनिया में नर हैं, पंछी हैं,
ऊंट, पहाड़, नदी-नाले।
पर मुझको तो अच्छे लगते,
ये मेरे सेव मिरच वाले !

जो लिखी न हो घरवाली पर

हां, सुनो, दिवाली है तुमने,
इस बार न मेवे बनाए हैं।
गुंझिया, पपड़ी, सूजी-बेसन के
लड्डू नहीं चखाये हैं।

औ, दहीबड़े, रहने भी दो,
तुम अब बूढ़ी होती जातीं।
कुछ याद नहीं, कुछ स्वाद नहीं,
रसवाद सभी खोती जातीं।

"तुम बूढ़े होगे, बड़े मुझे
बूढ़ी बतलाने आये हो।
शीशे में तो चेहरा देखो,
तुम खुद लगते बुढ़ियाए हो।

ये नाक तुम्हारी उचकी-सी,
ये गाल तुम्हारे बैठे हैं।
ये आंख तुम्हारी तिरं-फिट्ट-सी,
कान तुम्हारे ऐंठे हैं।

ये दांत तुम्हारे तिखसंगे,
है कमर कमन्द-कमानी-सी।
हैं अंग तुम्हारे सब ऊसे,
और चाल तुम्हारी नानी-सी।"

ओहो, इस छवि का क्या कहना,
बलिहारी है, बलिहारी है।
वह सूप बिचारा हार गया,
चलनी ने बाजी मारी है।

मैं इसीलिए तो कहता हूं,
तुम बुद्धिराशि हो कल्याणी!
उर्वशी, इन्दिरा, गिरा, उमा,
सब भरती हैं तुम से पानी।

क्या उर्वर बुद्धि तुम्हारी है!
क्या मौलिक बात बिचारी है!
कैसी उपमाएं देती हो,
कम्युनिस्टिक-सूझ तुम्हारी है!

हां माना, लम्बी नाक तुम्हारी,
ऊंची सूआलारी है।
हां माना, आंख तुम्हारी ऐसी,
जैसी खुली कटारी है।

हां माना दांत तुम्हारे मानो,
दाड़िम के-से दाने हैं।
हैं पाम तुम्हारे हाथी के-से,
काम बड़े मरदाने हैं।

"पाम तुम्हारे हाथी-के से
हांगे मुझे बनाते हो ?"
मैं भूल गया मेरा मतलब,
गजगामिन था, "बहकाते हो ?"

तुम शायद यह समझे बैठे,
यह अपढ़ बे-समझ नारी है।
इससे जो चाहे सो कहदो,
क्या समझे बात बिचारी है।

पर मैं वकील की बेटी हूं,
पंडित के कुल में ब्याही हूं।
मैं शत्रु-विरोधी तर्कशास्त्र,
तो घुट्टी में पीआई हूं।"

पर तर्कशास्त्र की प्रमुख पंडिते !
पाकशास्त्र भी आता है ?
या लाल किले पर अभी तलक,
यूनियन जैक लहराता है ?

"जी नहीं, यहां सबकुछ तयार है,
खील-बताशे ले आओ।
'जय-हिन्द', 'चलो दिल्ली' की
रौनक आज शाम को दिखलाओ।

पत्नीव्रत

संवत दुइ हजार के माहीं।
लीला गई सुसीला पाहीं॥
हाथ मिलाइ निकट बैठारी।
चाय-पात्र धरि दियो अगारी॥

टोस्ट--बटर---बिस्कुट मगवाए।
जे नित नूतन अमल सुहाए॥
आलूचाप मंगाय नवीनी।
'मिसिज श्याम' ताजा कर दीनी॥

चुसकत चाय सुसीला बोली।
मानहु चौंकि कोकिला बोली॥
कहत सुसीला अति मृदुबानी।
'पत्नीव्रत' अब सुनहु सयानी॥

नारि जाति कहं अति सुखकारी।
पुरुष-धर्म सुन लीला प्यारी॥
बड़े भाग्य विध नारी देही।
अधम सो पुरुष जो सेइ न तेही॥

पत्नी व्रत

धीरज, धर्म, मित्र, भर्तारी।
आपद्-काल परखिए चारी।
बूढ़ी, रोगिन, जड़, मतिहीना।
अंधी, बहरी, कलह-प्रवीना।
ऐसिहु तियकर किए अपमाना।
पुरुष पाव यमपुर दुख नाना।
एकै धर्म, एक व्रत नेमा।
काय-वचन मन तिय-पद प्रेमा।
जग पत्नी-व्रत चार कहाहीं।
वेद, पुरान, सन्त अस गाहीं॥
उत्तम, मध्यम, नीच, लघु, सकल कहहु समझाय।
सुनत पुरुष मन भव तरहिं, सुन सीता चितलाय॥

उत्तम के अस बस मन माहीं।
सपनेहु आनि नारि जग नाहीं॥
मध्यम पर तिय देखहिं कैसे।
माता, बहिन, पुत्रि निज जैसे॥
धर्म-विचार समुझि कुल रहहीं।
सो निकृष्ट पति श्रुति अस कहहीं॥
बिनु अवसर भय तें रह जोई।
जानहु अधम पुरुष जग सोई॥
पत्नी सँग जो पति छल करहीं।
रौरव नर्क कल्प शत परहीं॥
क्षण सुख लागि जनम शतकोटी।

दुख समुझै न भई मति थोरा ।।
जो पत्नीव्रत छल तजि गहहीं ।
बिनु स्रम पुरुष परम गति लहहीं ।
पत्नी बिमुख जनम जहँ जाई ।
रंडुआ होइ पाइ तरुनाई ।।
परम पावनी नारि, पति सेवहिं, शुभगति लहति ।
अस गावत अखबार, अजहुँ सिकन्दन जात-प्रिय ।।
सुमिरि तिहारो नाम, पति सब पत्नीव्रत करहिं ।
तेरे सेवक स्याम, कही कथा संसार हित ।।